ISSN 2277 - 7865
मूल्य ५०.०० रुपये
वर्ष ३६
अंक ०६
सितम्बर २०१२

तित्थयर

॥ जैन भवन ॥

शुभ कामनाओं सहित —

मनुष्य कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय,
कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।

Suvigya & Saurabh Boyed

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३६ अंक - ०६ सितम्बर २०१२

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय
पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@bsnl.in, jainbhawan@rediffmail.com

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00
Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655 and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street Kolkata - 700 007
Phone : 2241-1006

संपादन
डॉ. लता बोथरा

॥ जैन भवन ॥

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	जैशलमेर के कलापूर्ण जैन मन्दिर	भँवरलाल नाहटा	१८५
३.	कुवलय माला		१९८

ISSN 2277 - 7865

कवरपृष्ठ : एलोरा की गुफा में उत्कीर्ण देवी अम्बिका की मूर्ति।

Composed by:
Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

जैसलमेर के कलापूर्ण जैन मन्दिर

भंवरलाल नाहटा

1. श्री पार्श्वनाथजी का मन्दिर :

जैसलमेर दुर्ग के 8 जिनालयों में यह सर्वप्राचीन और विशाल कलापूर्ण बावन जिनालय है। छोटे से बाह्य प्रवेशद्वार में जाते ही सामने अद्‌भुत कलापूर्ण विशाल तोरण के दर्शन होते हैं। इसके उभय पक्ष में देवी देवताओं की मूर्तियाँ बनी हुई है जिनमें खरतरगच्छ के अधिष्ठाता भैरव की मुख्यता है। सुन्दर भाव भंगिमा युक्त मूर्तियाँ नृत्य-वाद्य की विभिन्न विधाओं से युक्त परिलक्षित है। हाथी, घोड़े, सिंहादि की आकृतियाँ और कलापूर्ण सुन्दर बेल बूटे पत्तियों की सूक्ष्म तक्षणकला से सुशोभित इस तोरण के ऊपरि भाग में भगवान पार्श्वनाथ स्वामी का मंगलचैत्य विराजमान है। प्रवेशद्वार पर एवं श्रृंगार चतुष्किका के छत और स्तंभों के अलंकरण बड़े मनोहर है।

यह मन्दिर पर्याप्त विशाल है। मूल मंदिर व चतुर्दिग् 51 देहरियाँ मिलाकर यह बावन जिनालय है। गर्भगृह, गूढ़मण्डप, सभामण्डप और खेलामण्ड़प से सुशोभित इस जिनालय के उभय पक्ष में संभवनाथ और शीतलनाथ जिनालय में जाने के मार्ग है। मन्दिर के बाह्य भाग से अष्टापदप्रासाद के ऊपर वाले शांतिनाथ जिनालय में जाने का पुल मार्ग है। जैसलमेर जिनालयों की प्रतिमाओं व परिकरों की विविधता, प्रासाद निर्माण की सुघड़ता, विविधपट्टिकाओं का बाहुल्य, शिखर की शास्त्रीय प्रमाणोपेत निर्माणशैली प्रेक्षक को इस शान्ति धाम में भौतिक प्रलोभनों से विरत होकर आत्मस्थ बनने के हेतु घण्टों आसन जमाकर बैठ जाने के लिए आह्वान करती है। ये भव्य और विशाल, एक से एक

संलग्न मन्दिर समूह इतने मनोरम लगते हैं कि दर्शक बाहर निकलने की इच्छा ही नहीं करता। शताब्दियों से बना शान्त वातावरण उसे आत्मोन्मुखी होने को विवश कर देता है। वह सोचता है कि मैं कहीं साक्षात् भगवान के समवशरण में तो न आ गया हूँ, जिधर देखों उधर वीतराग परमात्मा केवली परपदा के सौम्य उद्दात और शुभ्रनयनाभिराम दर्शन होते हैं। यहाँ के जिनालयों में स्थित बहुसंख्यक सपरिकर प्रतिमाओं की तक्षणकला और विविधता अपना वैशिष्ट्य बता रही है। इन शान्ति धाम कीर्ति-स्तंभों के निर्माताओं, निर्देशकों और शिल्पियों की प्रौढ़ जागरुकता और कुशल सुकुमार भाव प्रवण ललित कला का वर्णन शब्दों द्वारा व्यक्तिकरण संभव नहीं है वह तो आनन्द प्राप्त करने की और स्वयं को अन्तर आत्मोन्मुखी बनाने की विशिष्ट प्रक्रिया है जहाँ भावनाओं को मचलती हुई तरंगमाला हृदय समुद्र को मस्तिष्क के साथ घनीभूत होकर विकल्प जाल को नष्ट कर डालती है। शताब्दियों से अगणित महामना भव्यात्माओं ने अपना हृदय खोलकर परमात्मा के सामने रखा, अगणित स्वरलहरियों के माध्यम से भाव उर्मियाँ झंकृत हुई जो वहाँ के प्रशान्त वातावरण में ओत प्रोत है काश! हम उन्हें आत्मसात् करने में सक्षम हो सकें।

आइये! हम भगवान के दर्शन के लिए आगे बढ़े यहाँ तो गुम्बज तोरण सभी नृत्य-वाद्य-संगीत भक्तिरस से वे ओत-प्रोत है। इस मंडप में पाँच धड़ और एक मुँह वाली मूर्ति की अद्‌भुत कारीगरी देखकर कौतुकपूर्ण मनोरंजन कर लें। आप जिधर भी खड़े होकर देखेंगे, मुँह आपके सामने ही रहेगा।

मूलनायक श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा सपरिकर है पर इस परिकर में अन्य तीर्थंकरों की प्रतिमाएं न होकर उभय पक्ष में चामरधारी अनुचर रूप में इन्द्र अवस्थित है। तोरण पर दोनों ओर दो गजराज खड़े हैं और छत्र के उभय पक्ष में दो किन्नर व्योम स्थित उड़ते

हुए दिखाए हैं। कबान के नीचे उभय पक्ष में अवस्थित देवियों के देवग्रह हैं। सप्तफणों के दोनों ओर उड़ते हुए हरिण जैसे मुख वाले किन्नर कलश धारण किए अवस्थित है, पृष्ठ भाग में हाथी दिखाया है। चामरधारी इन्द्रों की देहरी-कक्ष पर दो चक्र शिल्प है। सिंहासन पादपीठ के दोनों कोनों में दाहिनी ओर पार्श्वयक्ष और वाम भाग में यक्षी अवस्थित है। तन्निकटवर्त्ती दो सिंह और दो गजराज उभय पक्ष में स्पर्धा में पर्याप्त आगे निकले खड़े हैं जिनकी पीठ पर सवार भी बैठे दिखाई देते हैं। मध्य भाग स्थित धर्मचक्र और उनके दोनों ओर शान्ति के प्रतीक हरिण निर्भयता पूर्वक बैठे हैं। देवी के उभयपक्ष में चामरधारी खड़े हैं। गर्भगृह में दूसरी छोटे परिकार वाली प्रतिमा भी इसी शैली की है। अखण्ड ज्योति के प्रकाश में प्रभु के दर्शन कर बाहर गूढ़ मण्डप में गर्भगृह के दाहिनी ओर ताक में मन्दिर के प्रतिष्ठापक आचार्यप्रवर श्री सागरचन्द्रसूरि की प्रतिमा सं. 1493 की प्रतिष्ठित है। आचार्यश्री दोनों जानु नीचे किए हुए करबद्ध विराजमान है और उनके मस्तक पर जिन प्रतिमा विराजित है। यह प्रतिमा पीले पाषाण की सतोरण है, दोनों ओर स्तम्भ है और आचार्य श्री के दाहिनी ओर शिष्य हाथ जोड़े खड़ा है। एक अन्य गुरु प्रतिमा श्वेत संगमरमर की है जो इसी प्रकार हाथ जोड़े विराजमान है। प्रतिमा के दाहिनी ओर रजोहरण और नीचे दो भक्त करबद्ध खड़े हैं। इस प्रतिमा पर कोई लेख नहीं है। पीले पाषाण की एक पंचतीर्थी रूप सपरिकर प्रतिमा है जिसमें दो तीर्थंकर पद्मासन में और दो कायोत्सर्ग में खड़े हैं।

सभा-मण्डप में उभय पक्ष स्थित प्रतिमाओं में एक पार्श्वनाथ स्वामी और दूसरी श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी की सप्त-फण मण्डित खण्डासन प्रतिमाएँ है। जिनेश्वर भगवान के कटि प्रदेश से जानु पर्यन्त लटकनदार कटिमेखला दोहरे अलंकरण युक्त है। उभयपक्ष स्थित परिकर में पाँच-पाँच देहरियां है जिसमें पद्मासनस्थ तीर्थंकर प्रतिमाएं विराजित है। साँप फण के दोनों ओर दो किन्नर व उपरि भाग में हाथी है। ऊपर

दो उड़ते हुए किन्नरों के मध्य एक करबद्ध है। कबान पर सात-सात व्यक्ति वस्त्र लिए हुए व्योम स्थित है और नीचे उभय पक्ष में चामरधारी है। ऊपर बीच में जिन प्रतिमा है। दूसरी ओर श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा भी इसी शैली की है। दोनों प्रतिमाओं को मिलाकर चतुर्विंशति जिन हो जाते है। इस सभा मण्डप में तीन पीले पाषाण की सपरिकर प्रतिमाएँ और एक श्वेत पाषाण की सपरिकर प्रतिमा है। इसी शैली की एक बड़ी विशाल धातुमय प्रतिमा है जिसके नीचे नवग्रह व एक-एक श्रावक-श्राविका चैत्यवन्दन करते हुए दिखाए है। यह पंचतीर्थी सं. 1536 की प्रतिष्ठित है। परिकर के उभयपक्ष में स्थित चामरधारियों के ऊपर दो दण्डधारी व तदुपरि भाग में ग्रास-मुख है।

तृतीय खेला मण्डप में बारह स्तंभों पर अत्यन्त मनोहर कारीगरी वाले कलापूर्ण तोरण है नृत्य करती अप्सराएं तथा चामरधारी आदि तथा गुम्बज में बारह पुत्तलिका-शालभंजिकाएं व लटकता हुआ मधुच्छत्र भी बड़ा मनोज है। इनके निम्न भाग में हंस पंक्ति बनी हुई है। मूल मन्दिर की भमत्ती नीची है और चतुर्दिग् बावन जिनालय है। सभा मण्डप में पीले पाषाण का 5 x $4^{1}/_{2}$ फुट की ऊँचाई वाले चार पट्ट है जिनमें तीन पट्ट तो नन्दीश्वर द्वीप के है। एक पट्ट शत्रुञ्जय महातीर्थ का है। ये पट सं. 1518 के प्रतिष्ठित है। बावन जिनालय की देवकृलिकाओं पर सं. 1473 के अभिलेख कई खुदे हुए और कई तत्कालीन काली स्याही द्वारा लिखे ही रह गए है जो आज भी उसी रूप में विद्यमान है। हमारे बीकानेर जैन लेख संग्रह में इन देक्कुलिकाओं के सभी अप्रकाशित लेख दे दिए गए है। इन देहरियों में परिकर युक्त व बिना परिकर वाली प्रतिमाएं विराजमान है।

शीतलनाथ जिनालय की ओर जाते उभयपक्ष में दो पीले पाषाण की सपरिकर प्रतिमाएं विराजमान है। इतः पूर्व सभामण्डप के कक्ष में बीस विहरमानों की विशालकाय पीले पाषाण की प्रतिमाएँ विराजमान है।

इस जिनालय में दो प्रशस्तियाँ लगी हुई है जिससे इस मन्दिर का निर्माण सं. 1459 में खरतरगच्छ नायक श्री जिनराजसूरिजी के आदेश से प्रारम्भ होकर सागरचन्द्रसूरिजी द्वारा गर्भगृह में मूलनायक स्थापित करने व सं. 1473 में चैत सुदी 15 को जिनवर्द्धनसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित होने के उल्लेख है। इस **खरतर प्रासाद चूड़ामणि** का नामकरण तत्कालीन जैसलमेर के महारावल लक्ष्मण के नाम से लक्ष्मण-विहार प्रसिद्ध हुआ। वास्तु शास्त्र के अनुसार इसे **श्री नन्दिवर्द्धमान प्रासाद** लिखा है। प्रथम प्रशस्ति का निर्माण साधु कीर्तिराज (आचार्यश्री कीर्तिरत्नसूरि का पूर्वनाम) और संशोधन लेखन सुप्रसिद्ध वा. जयसागरजी ने किया है। इस प्रकार इसके निर्माण में 14 वर्ष लगे थे। दूसरी प्रशस्ति में इस जिनालय के निर्माताओं की नामावली है। जिस पर आगे प्रकाश डाला जा चुका है। इसकी तीसरी प्रशस्ति सं. 1493 की गणधर गोत्रीय श्रावकों की है। जो खरतरगच्छ नायक श्रीजिनभद्रसूरिजी और महारावल वयरसिंह के समय की है जिसमें श्री सुपार्श्वनाथ सपरिकर बिम्ब प्रतिष्ठा का उल्लेख है। इन प्रशस्तियों को उत्कीर्णित करने वाले सूत्रधार क्रमशः धन्ना और हापा है।

श्री जिनसुखसूरि कृत जैसलमेर चैत्य-परिपाटी में इस मन्दिर की बिम्ब संख्या बावन देहरी में 545, नन्दीश्वर द्वीप के 3 पटों में 156, तोरण चौक में 112, शत्रुञ्जय पट की 96, दोनों चौक में 142, मूलगंभारे में 114 तिलका तोरण में 62 दूसरे तोरण में 12 कुल मिलाकर 1252 लिखी है। यति वृद्धिरत्नजी ने **वृद्धिरत्नमाला** में भी इस मन्दिर की बिम्ब संख्या 1252 ही लिखी है। नाहरजी को यह स्तवन त्रुटित मिला था जिससे उन्हें अन्तर मालूम पड़ा था।

2. श्री संभवनाथजी का मन्दिर :

यह जिनालय श्री पार्श्वनाथ जिनालय से संलग्न दाहिनी ओर है और उसी में से चालू रास्ता है। इस मन्दिर के नीचे भूमिगृह में विश्व-

विश्रुत ताड़पत्रीय ग्रन्थादि का अनुपम संग्रह वाला श्री जिनभद्रसूरि ज्ञानभण्डार स्थित है। इस मन्दिर को श्री जिनभद्रसूरिजी महाराज के सदुपदेश से चोपड़ा गोत्रीय सा. हेमराज-पूना-दीता पाँचा के पुत्र शिवराज, महीराज, लीला और लाखण ने सपरिवार सं. 1494 में रावल वैरिसिंह के शासनकाल में निर्माण कराया एवं बड़े भारी समारोहपूर्वक सं. 1497 में श्री जिनभद्रसूरिजी महाराज के कर कमलों से प्रतिष्ठित कराया। इस अवसर पर 300 जिन बिम्बों की अंजन शलाका व ध्वजा-दण्ड-शिखरादि की प्रतिष्ठा हुई। रावल वैरिसिंह ने इन चारों भ्राताओं को वस्त्रालंकार द्वारा अपने भाई की तरह सम्मानित किया। इस जिनालय की 35 पंक्तियों वाली विस्तृत प्रशस्ति का निर्माण श्री जय सागरोपाध्याय के शिष्य सोमकुंजर ने किया और पं. भानुप्रभ गणि ने आलेखित की। जिनसेनगणि ने इस प्रासाद के निर्माण समय प्रशंसनीय उद्यम किया था। सूत्रधार शिवदेव ने यह प्रशस्ति टंकोत्कीर्णित की। इस प्रशस्ति की 10वीं पंक्ति में वर्द्धमानसूरिजी के वचनों से विमल मंत्री द्वारा आबू पर्वत पर मन्दिर कराने का उल्लेख है। श्री जिनभद्रसूरि द्वारा उज्जयंत, चित्तौड़, मांडवगढ़, जाउर में उपदेश देकर जिनालय व पाटण आदि में ज्ञानभंडार व मांडव, पालनपुर, तलपाटक आदि में जिन बिम्बादि की प्रतिष्ठा व अनेकान्त जयपताका, विशेषावश्यक, कर्मप्रकृति आदि शिष्यों को पढ़ाने व छत्रधर वैरिसिंह, व्यंबकदास आदि राजाओं के चरण-भक्त होने का उल्लेख है। चोपड़ा वंश की विस्तृत नामावली देते हुए सं. 1487 में शत्रुंजय, गिरनार की संघयात्रा एवं पंचमी उद्यापन करने का वर्णन है। इस जिनालय की प्रतिष्ठा के समय 7 दिन तक स्वधर्मी-वात्सल्य करने का भी उल्लेख किया है। प्रशस्ति के प्रारम्भ में पार्श्वनाथ, शांतिनाथ, संभवनाथ के प्रासादत्रय की नमस्कार करने की महत्वपूर्ण बात लिखी है।

प्रस्तुत मन्दिर के प्रवेश द्वार क पास दीवाल में चतुर्दश महास्वप्न एवं अष्ट मंगल के 12 प्रतीक बने हुए हैं। ज्ञानभण्डार के प्रवेश द्वार के

ऊपरि भाग में शत्रुंजय व गिरनार के पट्ट प्रतिष्ठित है। प्रवेशद्वार व उत्तानपट बड़े भव्य और कलापूर्ण है।

मूलनायक भगवान संभवनाथ स्वामी की प्रतिमा बड़ी ही भव्य और सपरिकर है। परिकर की निर्माण शैली पार्श्वनाथ जिनालय जैसी ही है। गर्भगृह के बाहर श्वेत एवं पीले पाषाण निर्मित दोनों ओर दो प्रतिमाएं सपरिकर और भव्य है। सभा मण्डप में विशाल तोरण के मध्य पीले पाषाण की सपरिकर विशाल प्रतिभा है जिसमें दोनों ओर दो दो प्रतिमाएं है। एक नेमिनाथ स्वामी है व दाहिनी ओर की देहरी में श्वेत सपरिकर प्रतिमा है।

खेला-मण्डप में भी तोरण युक्त सपरिकर देहरी व तीन सपरिकर पीले पाषाण की प्रतिमाएं है। दोनों परिकर देहरी के तोरण को मिलाने से चतुर्विंशति जिन हो जाते है। बीस विहरमान पट्ट, नन्दीश्वर द्वीप पट्ट, चतुर्विंशति जिन पट्ट व आले में प्रस्तुत मन्दिर के प्रतिष्ठापक श्रीजिनभद्रसूरिजी की प्रतिभा विराजमान है जो सं. 1536 में प्रतिष्ठित है।

इस मंदिर में प्रवेश करते ही दो छोटे मण्डप है तथा स्तंभ शिल्प कला युक्त है और सभी कक्ष मधुछत्र सुशोभित है। भमती की देहरियों में दो चरण पादुकाएं, चार सपरिकर पीत वर्ण की प्रतिमाएं है। जिनालय के पृष्ठ भाग में देहरी में एक शिखरबद्ध तिमंजिला देवालय मानस्तंभ की भांति बना हुआ है। इसमें चार खंडासन व ऊपर की दोनों मंजिल में चार-चार पद्मासनस्थ प्रतिमाएं विराजमान है।

संभवनाथ जिनालय के पट्ट बड़े ही महत्त्वपूर्ण है। शत्रुंजय, गिरनार तीर्थ पटों पर तो स्थान परिचय-नाम भी खुदे हुए है जो पाँच सौ वर्ष पूर्व तीर्थ का वास्तविक प्रामाणिक मानचित्र प्रस्तुत करते हैं। उस समय क्या कहाँ था, और आजतक हुए अनेक

परिवर्तनों का इतिवृत्त जानने के लिए वे बड़े ही उपयोगी है। शत्रुंजयगिरनार पट्टिका 5।। x 4।। फुट की सं 1518 में मंदिर निर्माता चोपड़ा परिवार के अभिलेख युक्त है। इसकी प्रतिष्ठा श्री जिनभद्रसूरिजी के पट्टधर श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने कराई थी। दूसरी पट्टिका 6 x 3।। की संखबाल परिवार द्वारा निर्मापित है। आसराज की धर्मपत्नी गेली के पुण्यार्थ प्रतिष्ठापित है जो चोपड़ा शिवराज आदि की बहिन थी। नंदीश्वर और बीस विहरमान पट्टिकाएं 3। x 3। माप की है जो सं. 1497 में चोपड़ा बन्धुओं द्वारा निर्मापित और जिनभद्रसूरि द्वारा प्रतिष्ठित है। एक तप-पट्टिका भी बड़ी महत्वपूर्ण है यह पीले पाषाण की 2 फुट 10 इंच चौड़ी है। इसमें चौबीस तीर्थंकरों के पाँच कल्याणक, महाभद्रतप, सर्वतोभद्रतप, भद्र, भद्रोत्तर, धर्म चतुर्थ, कर्मचतुर्थ, वज्रमध्य, यवमध्य इत्यादि अनेक प्रकार की तपश्चर्याओं का स्वरूप उत्कीर्णित है। सं. 1505 में संखवाल गोत्रीय आसराज की भार्या उपर्युक्त गेली श्राविका द्वारा वाचनाचार्य रत्नमूर्ति के सदुपदेश से निर्मापित है जिनसेन गणि ने उद्यम किया और पं. मैरुसुन्दर ने लिपिबद्ध की। शिल्प की अन्यत्र दुर्लभ ये विधाएं जैसलमेर की ही अनुपम देन है। इस जिनालय में **जब जितना मंदिर और तिल जिनी प्रतिमा** की प्रसिद्धि के कारण लोग अवश्य दर्शन को लालायित रहते हैं।

श्री जिनसुखसूरिजी के अनुसार बाहर के चौक में 200, भीतर चौक में 281 मंडप में 36, गंभारे में 24 और भमती में 72 बिम्ब संख्या कुल मिलाकर 613 होती है जबकि वृद्धिरत्नजी ने 604 लिखी है।

सं. 1550 में हेमध्वज रचित स्तवन में 614 प्रतिमा संख्या लिखी है—

प्रासाद जिसओ नलिनीविमाण, चोपड़ा तणओ दीसई प्रधान।
मूलनायक गरुयउ संभवसामि, बिंबछसइ चवदोतर सिद्धि गामि।।

शिलालेखादि से चोपड़ा परिवार का वंश वृक्ष इस प्रकार है–

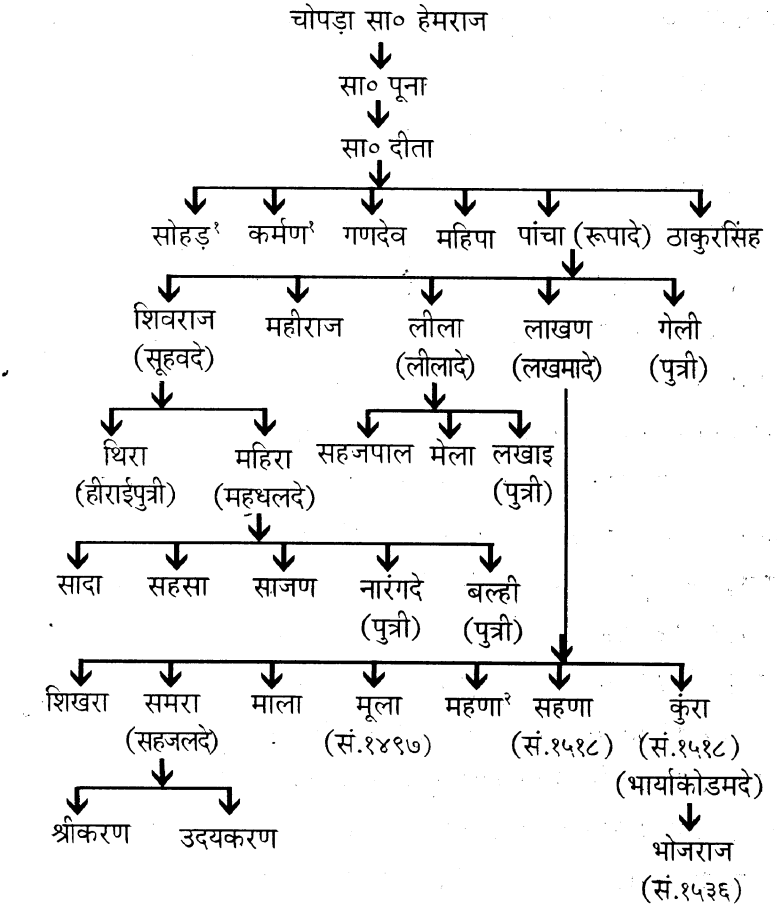

3. अष्टापदप्रासाद 4 शान्तिनाथ जिनालय

पार्श्वनाथ जिनालय और अष्टापद प्रासाद के बीच राजमार्ग है। गली में पाँच-सात सीढ़ी चढ़कर अष्टापद प्रासाद का प्रवेशद्वार है। इस मन्दिर के ऊपर तल्ले में शान्तिनाथ जिनालय बना हुआ है। दोनों मन्दिरों के बीच गली के ऊपर पुल भी बना हुआ है, जहाँ दशावतार

1. इन दोनों का सं. 1451 का पार्श्वप्रतिमा जिनराजसूरि प्र० (नाहर 2283)
2. अष्टापद प्रशस्ति में यह नाम है और नाहर लेखांक 2396 में सं० 1536 में भा० माणिक दे पुत्र धन्ना-वन्नादि, सूतों का नाम है।

मूर्त्तियाँ आदि रखी हुई है। ऊपर से जाने वाले पहले शांतिनाथ जिनालय के दर्शन करके नीचे अष्टापद प्रासाद में जा सकते हैं।

अष्टापद प्रासाद में मूलगंभारे में चारों ओर 7+5+7+5 चौबीस जिनेश्वर की प्रतिमाएँ है इनमें मूलनायक रूप में कुन्थुनाथ स्वामी है। दो-दो गुरू मूर्तियाँ भी विराजमान है, प्रतिमाएँ सपरिकर है। तीन चतुर्विंशति पट्ट, एक नंदीश्वर बावन जिनालय पट्ट, चार सपरिकर प्रतिमाएँ और एक 72 जिन अर्थात् अतीत-अनागत-वर्त्तमान चौबीसी पट्ट विराजमान है। मूलगंभारे के प्रवेशद्वार पर अद्‌भुत कोरणी की हुई है। बाहर में श्वेत परिकर वाली दो प्रतिमाएँ, एक चतुर्विंशति पट्ट और कायोत्सर्ग मुद्रा में अवस्थित सुपार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमाएँ है जिनमें 11+11 प्रतिमाएँ और खंडासन मूलनायक मिलाकर चतुर्विंशति जिन प्रतिमाएँ हो जाती है। संभा मण्डप छोटा-सा है किन्तु चार स्तम्भ व छः तोरण बने हुए है। शिखर के दो स्तर में प्रतिमाएँ है, जिनमें तीर्थंकर गणधर, यक्ष-यक्षिणी और नृत्यरत अप्सराएँ व शालभंजिकादि है। किन्नरियाँ ढोलक, मुरली, तुरही, तबूरे आदि विविध वाजित्रों सहित है जो नृत्य की अनेक भाव भंगिमा युक्त मुद्राओं में स्थित है। महिषासुरमर्दिनी आदि देवी मूर्तियाँ भी परिलक्षित होती है। कोई युवती आरसी देख रही है तो कोई धनुर्धारिणी शेर का शिकार कर रही है। बटुक भैरव मूर्ति के समीप निर्वसन स्त्रियाँ आदि शृंगारस प्रधान उपादान बने हैं। अधर रसास्वादन करते तरुण जोड़े शुकनाशा, मृगनयनी, कदली जंघा, पीनस्तनी व चन्द्रमुखी कामिनियों की देहयष्टि निर्माण में शिल्पियों ने कमाल कर दिया है। ये भाव भंगिमा और सुकुमारता में खजुराहों, कोणार्क या आबू की शालभंजिका-पुत्तलिकाओं से किसी प्रकार न्यून नहीं है। शिखर के चतुर्दिक् 37-37 प्रतिमाएँ हैं जिनमें कतिपय तीर्थंकर-गणधरादि की भी मूर्तियाँ है।

देवकुलिकाओं में दो बड़ी दो छोटी व एक सपरिकर श्वेत प्रतिमाओं के अतिरिक्त पीले पाषाण की बिना परिकर की प्रतिमाएँ है।

शांतिनाथ जिनालय के सामनें कोने में दाहिनी ओर दो सुन्दर पाषाण निर्मित गजराज अवस्थित है जिनपर मन्दिर निर्माता सेठ सं. खेता और उनकी भार्या सरस्वती की मूर्तियाँ विराजमान है जो प्रभु दर्शन-वंदनार्थ प्रस्तुत है। ये मूर्तियाँ उनके पुत्र वीदा द्वारा निर्मापित है, समयसुन्दरजी के स्तवन में इन्हीं को मन्दिर निर्माता लिखा है।

नीचे अष्टापद प्रासाद और ऊपर का शान्तिनाथ जिनालय चोपड़ा सेठ लाखण व संखबाल सेढ़ खेता ने मिलकर निर्माण कराया था। संखवाल खेता की माँ गेली श्राविका चोपड़ा सं. पांचा की पुत्री अर्थात् लाखण की बहिन थी इस प्रकार दोनों परिवारों में वैवाहिक सम्बन्ध था। इसकी प्रशस्ति बड़ी विशाल और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण 45 पंक्तियों में उत्कीर्णित है और ऊपर वाले प्रासाद में लगी हुई है। जिसमें संखवाल परिवार द्वारा संपन्न धर्मकार्यों का राजस्थानी भाषा में विशद वर्णन है। इन दोनों मन्दिरों की प्रतिष्ठा सं. 1536 में हुई उस समय रावल देवकर्ण जैसलमेर के महाराजा थे।

श्री पार्श्वनाथ जिनालय से शान्तिनाथ जिनालय में आने का ऊपर मार्ग बीच वाली गली पर राउल जयतसिंह के आदेश से बनी हुई पुल द्वारा है जिसमें दशावतार सहित श्री लक्ष्मीनारायण जी की मूर्ति गवाक्ष में विराजित की गई थी। यहाँ रखी हुई नृत्य-वाद्य रत नर्त्तकी और शालभंजिका प्रतिमार्य शिल्पकला के अद्वितीय नमूने है।

शान्तिनाथ जिनालय में एक चतुर्विंशति पट्ट एवं दो शत्तरिसय जिनपट्टक हैं। मूलनायक भगवान् की प्रतिमा पित्तलमय पंचतीर्थी है, चौमुख विराजित अन्य तीन प्रतिमाएं पाषाणमय है। ऊपर भी 1-1 प्रतिमा है। इस जिनालय की अन्य प्रतिमाओं में दो पीले पाषाण की खंङासन सप्तफण मण्डित व एक पंचतीर्थी है। शत्रुंजय गिरनार तीर्थ पंट्ट पर सं. 1585 का अभिलेख संखवाल बीदा की भार्या के पुण्यार्थ प्रतिष्ठित है। हाथी पर आरूढ़ सेठ की धातुमूर्ति पर सं. 1590 का लेख है।

इस जिनालय का शिखर अत्यन्त आकर्षक पृथुल और बहु संख्यक कुंभिकाओं से युक्त है। ऊपर स्तम्भयुक्त गवाक्ष द्वार के पास सुखासन स्थित सतोरण प्रतिमा व शिखर पर ऊपर तक बहु संख्यक सिंह बने हुए है। दर्शक को लगता है कि हिमालय की बरफ के नीचे रहा हुआ अष्टापद का सिंह निषद्या प्रासाद ही साक्षात् दर्शन दे रहा है।

श्री जिनसुखसूरिजी के स्तवनानुसार अष्टापद जिनालय में बिंब संख्या 425 और वृद्धिरत्नमाला में 444 लिखी है। इसी प्रकार शान्तिनाथ जिनालय में श्री जिनसुखसूरिजी ने 755 और वृद्धिरत्नमाला में बिम्ब संख्या 804 लिखी है। भावहर्ष कृत अष्टापद गीत के अनुसार 398 नीचे और 727 प्रतिमाएँ ऊपर के प्रासाद में है, जो कुल 1125 होती है।

सं. 1550 में हेमध्वज रचित स्तवन में :–

जिन भवन तणउ सांभलि प्रभाव, लाखण खेता मनि हुयउ उच्छाहु।
प्रासाद मंडवियउ भलइठामि, पुण्य न जाणउ एणि कामि।
अष्टापद तीरथ कियउ विशाल, सिरि संति कुंथु बहु बिंब माल

उपर्युक्त प्रशस्ति में संखवालों के धार्मिक कृत्यों का वर्णन इस प्रकार है :–

1. कोचरसाह ने कोरंटा और संखवाली गाँव में उत्तुंग तोरण युक्त जैन प्रासाद कराये। आबू, जीरावला तीर्थ की संघ सह यात्रा की। उदारता पूर्वक अपना समस्त धन लोगों को देकर कोरंटा में 'कर्ण' विरुद पाया।

2. सं. आसराज ने शत्रुंजय महातीर्थ की संघ सहित यात्रा की। इनकी धर्मपत्नी चोपड़ा पाँचा की पुत्री गेली ने शत्रुंजय, गिरनार आबू तीर्थ की यात्रा की। शत्रुंजय तीर्थ पट्ट और सतोरण नेमिनाथ बिंब निर्माण कराके संभवनाथ जिनालय में स्थापित किए। शैलमय तप-पट्टिका बनवाई।

3. सं. खेता ने सं. 1511 में शत्रुंजय गिरनार की संघ सह यात्रा की। प्रतिवर्ष यात्रा करते सं. 1524 में तेरहवीं यात्रा करके छरी पालते हुए आदिनाथ भगवान की पूजा की। छट्ट तप पूर्वक दो लाख नवकार का चाप कर चतुर्विध संघ की भक्ति की। अपने मामा चोपड़ा लाखण के परिवार के साथ जैसलमेर गढ़ पर द्विभूमिक अष्टापद प्रासाद कराके सं. 1536 मिती फागुण सुदि 3 के दिन रावल देवकर्ण के राज्यकाल में श्रीजिनसमुद्रसूरि से प्रतिष्ठा कराई। अष्टापद प्रासाद में कुंथुनाथ और ऊपर शांतिनाथ मूलनायक स्थापित किए। चौबीस तीर्थंकरों की अनेक प्रतिमाएँ निर्माण कराई। सं. खेताने सारे मारवाड़ में समकित के लड्डू और रुपयों की प्रभावना की। स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्र लिखाए। जिनसमुद्रसूरिजी के पास श्री शांतिसागरसूरिजी की पद स्थापना कराई। अष्टापद जिनालय के दोनों तलों में भमती कराके बिंब स्थापित किए।

4 सं. वीदा ने समस्त परिवार सहित शत्रुंजय गिरनार-आबू तीर्थों की यात्रा की। समकित के लड्डू-घृत, खांड की लाहण की। गच्छनायक श्री जिनहंससूरि जी का बरसगाँठ महोत्सव करके प्रत्येक घर में अल्ली (मुद्रा) बाँटी। पंचमी तप का उद्यापन किया। स्वर्णमुद्रादि अनेक वस्तु चढ़ाई। अनेक बार कल्पसूत्र बंचाया। पाँच बार लाख नवकार जाप करके अल्ली की लाहण की।

क्रमशः

कुवलय माला

श्री केवल मुनि

मूषक मुक्ति :

सम्यक्त्व बिना इसकी मुक्ति कैसे होगी? देवेन्द्र का प्रश्न था।

प्रभु ने बताया—

अब इसे सम्यक्त्व प्राप्त हो चुका है। यहाँ से यह जायगा तो संसार के दुःखों पर विचार करता हुआ चारों प्रकार का आहार त्याग देगा और संथारा पूर्वक मरण करके मिथिला नगरी के राजा मिथिल की रानी चित्रा के गर्भ से राज-पुत्र के रूप में जन्म लेगा। इसका नाम मित्रकुमार रखा जायगा। वहाँ भी इसका स्वभाव उग्र होगा और यह प्राणियों को तंग करता हुआ आठ वर्ष की आयु का हो जायगा।

उसी समय एक अवधिज्ञानी मुनि इसकी इस प्रवृत्ति को देखकर इसे इसके पूर्वभवों का स्मरण करायेंगे। उनके प्रभाव से यह दीक्षित हो जायेगा। घोर तपश्चर्या के बल से कर्मों का क्षय करके यहाँ उपस्थित सभी जीवों से पहले ही मुक्त हो जायेगा।

क्या आपसे भी पहले? देवेन्द्र ने पूछा।

भगवान ने फरमाया—

हाँ मुझसे भी पहले क्योंकि जिस समय इसे केवलज्ञान होगा उसी समय इसका आयुष्य भी पूर्ण हो जायेगा। इस तरह यह अंतकृत केवली होगा। और अभी मेरी आयु दश लाख वर्ष की शेष है। अतः इसकी मुक्ति मुझसे पहले ही हो जायेगी।

चूहे के भविष्य को सुनकर देव, असुर, मानव सभी को कौतुक उत्पन्न हुआ। आदरपूर्वक देवराज ने उसे उठा लिया और कहने लगे-

तू कृतार्थ हुआ। यहाँ उपस्थित सभी प्राणियों से पहले मुक्ति प्राप्त करेगा। भावी केवली होने के कारण तू सभी देव-असुर-मानवों द्वारा पूज्य बन गया है। धन्य है, यह जिनधर्म कि पशु भी पूज्य बन जाते हैं।

सभी लोगों से प्रशंसा पाता हुआ चूहा कुछ देर तक तो लोगों के हाथों में घूमतो रहा और फिर बन की ओर चला गया।

इस अवसर पर पाँचों देवों को भी अपने भविष्य की उत्सुकता जागी। पद्मप्रभ देव ने पूछा—

प्रभो! हम पाँचों दुर्लभबोधि हैं, या सुलभबोधि?

निमित्त पाकर सुलभवोधि बनोगे, अन्यथा नहीं। प्रभु ने कहा।

पद्मप्रभ देव ने पूछा—

हम सब कब मुक्त होंगे?

चौथे जन्म में।

पद्मसार देव ने जिज्ञासा प्रगट की—

यहाँ से च्यव कर हम पाँचों कहाँ उत्पन्न होंगे?

भगवान ने बताया—

तुम अयोध्या के राजपुत्र कुवलयचन्द्र होगे, पद्मवर कुवलय माला, पद्मचन्द्र वन में सिंह, पद्मप्रभ वणिक् पुत्र सागरदत्त और पद्मकेसर पद्मवर का पुत्र पृथ्वीसार बनेगा।

तीर्थंकर प्रभु के वचन सुनकर पाँचों देव सम्यक्त्व प्राप्ति के बारे में विचार करने लगे। चारों ने कहा—

हे पद्मकेसर! सबसे अन्त में च्यवन तुम्हारा होगा, इसलिये तुम हम सबको संबोधना।

अवश्य पद्मकेसर ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया। परस्पर सबने निश्चय कर लिया कि पहले मरने वाले को अन्य साथी जाकर संबोधेंगे।

सागरदत्त की कथा :

भरतक्षेत्र की चंपा नगरी अति प्रसिद्ध थी। यहाँ के ऊँचे भवन, उद्यान, वापिका और चौड़े राजपथ नगरी की समृद्धि के साक्षी थे। इस नगरी में कुबेर जैसी संपत्ति का धनी सेठ धनदत्त निवास करता था। उसकी पत्नी लक्ष्मी थी—वह थी भी साक्षात् लक्ष्मी। पद्मप्रभु देव अपना आयुष्य पूर्ण करके उसकी कुक्षि में अवतरित हुआ।

नौ महीने और सात दिन बाद सेठानी लक्ष्मी ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम सागरदत्त रखा गया। सागरदत्त चन्द्रकला से समान बढ़ने लगा। अनुक्रम से इसने अपनी वंश-परंपरानुकूल अनेक विद्याएँ सीख लीं। युवा होने पर उसका विवाह समान कुलशील वाली कन्या श्रीदेवी के साथ कर दिया गया। सागरदत्त दाम्पत्य-सुखों को भोगने लगा।

शरद ऋतु आई। नगरवासियों ने कौमुदी महोत्सव का आयोजन किया। सोने में सुहागा यह हुआ कि नाटक मंडली भी आ गई। सागरदत्त अपने मित्रों के साथ वहाँ जा पहुँचा। नाटक के मध्य नट ने एक सुभाषित कहा—

जो बुद्धिशाली, कुलवान, क्षमावान, विनयवान, धीर, कृतज्ञ, चतुर, दयालु, सरल, पवित्र, सत्य और मधुरभाषी, नीतिज्ञ, बंधुओं को पालने वाला और दाता होता है वह मनुष्य इस जन्म और आगामी जन्म को सफल करता है।

इस सुभाषित को सुनकर उपस्थित लोगों ने उच्चस्वर से उद्घोष किया—

सागरदत्त को भी यह सुभाषित बहुत अच्छी लगी। उसने भी दिल खोलकर प्रशंसा की। एक ओर से आवाज आई—

कोरी प्रशंसा से क्या होता है, श्रेष्ठि पुत्र! नट को कुछ पुरस्कार भी मिलना चाहिए।

वणिक ही तो हैं, धन का मोह कैसे छोड़ दें? दूसरी ओर से प्रत्युत्तर मिला।

तो व्यर्थ की शाब्दिक प्रशंसा क्यों करते हैं?

उसमें लगता क्या है? सिर्फ जवान ही तो चलानी पड़ती है।

बात लग गई सागरदत्त को। उसने तुरन्त उच्चस्वर से घोषणा की-

नट! मेरी ओर से लाख रुपये लिख लो, प्रातः ही तुम्हें मिल जायेंगे।

एक साथ लाख रुपये का पुरस्कार! चकित हो गए उपस्थित जन।

एक व्यक्ति ने व्यंग कस ही दिया—

हाँ! हाँ!! पिता की कमाई है, चाहे जितना फूँक लो। खुद कमाकर इस तरह लाख-लाख रूपये का पुरस्कार दोगे तब मालूम पड़ेगा।

दूसरे ने कहा—

धनी बाप का बेटा है, जो करगुजरे सो थोड़ा है।

संसार है ही ऐसा, जब सागरदत्त ने पुरस्कार नहीं दिया तो वणिक् जाति को ही कृपण कहने लगे और पुरस्कार दे दिया तो फिजूलखर्च। दुनिया को कैसे भी चैन नहीं।

सागरदत्त का दिल उचट गया। वह उठकर चला आया। उसके मन-मस्तिष्क में एक ही झंझावात चल रहा था--खुद की

कमाई.....खुद की कमाई। उदास मुख घर आ गया और अपनी शय्या पर जा लेटा। पत्नी ने पूछा—

स्वामी! उदास क्यों हैं? क्या नाटक में दिल नहीं लगा?

हाँ दिल उचट गया। सागरदत्त ने बात बना दी।

पत्नी ने भी आग्रह नहीं किया। वह सो गई। सागरदत्त के हृदय में तो तूफान चल रहा था। वह अपने अपमान से क्षुब्ध था। लोग उसकी हँसी उड़ा रहे थे। भद्र और सरल स्वभावी पुरुषों को तनिक सी बात ही चुभ जाती है। यही दशा सागरदत्त की भी थी। उसके मस्तिष्क का तूफान कम नहीं हुआ वरन् बढ़ता ही चला गया। वह उठा और अपने वासगृह के दरवाजे पर लिखा—

यदि एक वर्ष में सात करोड़ रुपया उपार्जन न कर सका तो अग्नि प्रवेश कर लूँगा।

और वह बाहर निकल गया। राज-पथ पार कर वनपथ पर जा पहुँचा। वन पथ पर दक्षिण दिशा की ओर चलने लगा। चलते चलते वह जयश्री नामक नगरी में पहुँच गया।

जयश्री एक समृद्ध और सम्पन्न नगरी है। इसमें उच्चकोटि के व्यापारी निवास करते हैं। यह समुद्र के किनारे बसी हुई है।

सागरदत्त मार्ग श्रम मिटाने हेतु नगरी के बाहर ही जीर्ण उद्यान में ठहर गया। वहीं बैठकर सोचने लगा—क्या व्यापार करूँ, पैसा तो एक भी पास नहीं है, व्यापार होगा भी कैसे? समुद्र में डुबकी लगाकर मोती निकाल लाऊँ? खान खोदू? किसी गिरिगुफा में बैठकर सिद्धि प्राप्त करूँ? धातुकर्मी बनूँ? क्या करूँ कि सात करोड़ रुपये मिलें। इन विचारों में निमग्न वह इधर-उधर देखने लगा। तभी उसकी दृष्टि एक वृक्ष पर अटक गई। अपनी सीखी हुई कलाओं के ज्ञान से उसने समझ लिया कि इसके नीचे धन अवश्य है। धन-प्राप्ति की आशा से

उसने वृक्ष खोदना शुरू किया। कुछ ही देर बार उसे अक्षय भंडार मिला। ज्योहीं उसने हाथ बढ़ाया, एक आवाज सुनाई दीं—

वणिक् पुत्र यह धन चक्रवर्ती के निमित्त है, तुम इसमें से एक अंजलि ही ले सकते हो, अधिक नहीं।

और उसके देखते देखते वह अक्षय भंडार पाताल में समा गया। रह गई केवल एक अंजलि भर मुद्राएँ। उन्हें लेकर उसने अपने वस्त्र में बाँधा और सोचने लगा—वाह रे, भाग्य का छल? हाथ आई लक्ष्मी भी देखते-देखते अदृश्य हो गई।

उसने प्राप्त धन से ही सन्तोष किया और नगरी में प्रविष्ट हुआ। दुकानों पर बैठे व्यापारियों की ओर देखता चला जा रहा था कि एक वृद्ध अनुभवी व्यापारी पर उसकी निगाह जम गई। उसके पास जाकर बोला—

पिताजी! प्रणाम!

चिरंजीवी हो, वत्स!

व्यापारी ने आशीर्वाद दिया और काम में लग गया। ग्राहकों की भीड़ थी और वृद्धावस्था के कारण वह व्यापारी शीघ्र ही उन्हें निपटा नहीं पा रहा था। सागरदत्त ने उसकी परेशानी समझी और बोली–

पिताजी! माल मैं तोलता हूँ आप हिसाब करके दाम लेते जाइये।

वृद्ध को क्या चाहिए, एक सहायक। उसने सागरदत्त की बात मान ली। सागरदत्त जल्दी-जल्दी माल निकालकर तोलने लगा। ग्राहक शीघ्र निपटने लगे। सही तोल देखकर अन्य ग्राहक भी आए। सागरदत्त सबको निपटाता रहा, अपने मधुर व्यवहार से उन्हें सन्तुष्ट भी करता रहा। थोड़ी ही देर में बहुत सा माल बिक गया और खूब लाभ हुआ। ग्राहकों से फुरसत पाकर वृद्ध व्यापारी सोचने लगा—यह युवक

पुण्यवान है, वणिक् ही लगता है, कितनी शीघ्र दुकान सँभाल ली। यदि यह मेरे पास ही रह जाय तो कितना अच्छा हो। उसने पूछा—

वत्स! कहाँ से आ रहे हो?

चंपापुरी से।

किसके मेहमान हो?

सज्जन पुरुष का।

वृद्ध समझ गया कि इस परदेशी युवक का यहाँ कोई नहीं है। उसने हँसकर पूछा—

क्या मैं सज्जन नहीं है?

अवश्य! आपके समान सज्जन और कौन हो सकता है, जो मुझ जैसे अपरिचित का भी विश्वास कर लिया। सागरदत्त ने भी मुस्कराकर उत्तर दिया।

संध्या समय दुकान बन्द करके जाते समय वृद्ध सागरदत्त को भी अपने घर ले गया। स्नान भोजन आदि से सत्कार करके वृद्ध ने अपनी युवा पुत्री को सामने बिठाकर कहा—

वत्स! यह कन्या तुमको समर्पित करता हूँ।

सागरदत्त ने कन्या की ओर देखा। सभी प्रकार से सुन्दर थी- साक्षात् रति! उसने कहा—

तात! यह अचानक विवाह की बात आपको कैसे सूझी? मेरा कुल-शील, परिचय आदि तो कुछ जाना नहीं।

वृद्ध ने कहा—

वत्स ! मनुष्य का कुल-शील उसका व्यवहार बता देता है। तुम वणिक् पुत्र हो यह तो मैं दुकान पर ही जान गया था। साथ ही तुम्हारी

विनयशीलता, चतुरता और अन्य गुणों ने तुम्हारा शील भी बता दिया। अब जानने को बाकी क्या रहा? मेरी पुत्री को स्वीकार करो।

अपने विवाह की बात सुनकर कन्या उठकर चली गई। लज्जाशील युवतियों का आचरण ऐसा ही श्लाघनीय होता है।

सागरदत्त ने अब अपने मन की बात कही—

तात! मैं अपने पिता के घर से किसी कारणवश निकला हूँ। यदि वह कार्य पूरा न हुआ तो मैं अग्नि में जल जाऊँगा। यह मेरा संकल्प है।

अग्नि-प्रवेश की बात सुनकर बुद्ध के बूढ़े तन में झुरझुरी आ गई। फिर भी संयत होकर उसने पूछा—

तुम्हारा संकल्प कैसे पूरा हो सकता है? मैं कोई सहायता कर सकता हूँ?

यदि आपकी इच्छा हो तो मुझे व्यापार हेतु माल के वाहन भरवा दे। अपना संकल्प पूरा होने पर मैं वहीं करूँगा जो आप कहेंगे।

बुद्ध व्यापारी ने कुछ देर तक मनन किया और फिर बोला—

ठीक है, तुम व्यापार करना चाहते हो, मैं तुम्हारी सभी प्रकार से सहायता करूँगा।

पिता अपनी पुत्री के लिए योग्य वर पाने हेतु क्या नहीं करता? वृद्ध व्यापारी ने भी सागरदत्त की सहायता की। दूसरे दिन ही दूसरे द्वीप में बेचने योग्य माल खरीद लिया गया। वाहन तैयार कर लिए गए, सेवकों का प्रबन्ध हो गया और शुभ मुहूर्त में वाहन चल पड़े।

सागरदत्त हृदय में उत्साह और उमंग लिए चला जा रहा था। निर्विघ्न यात्रा करके वाहन यवन द्वीप जा पहुँचे। सागरदत्त ने वहाँ माल

बेचा और वहाँ से वाहनों में भरकर मणि, मोती आदि भर लिए। वाहन पुनः चल पड़े।

ज्योंही सागरदत्त के वाहन समुद्र के मध्य में पहुँचे आकाश में उत्तर दिशा की ओर एक छोटा सा काले रंग का मेघखण्ड दिखाई दिया। उसे देखकर सागरदत्त ने नाविकों से कहा—

यह तो घोर विपत्ति का सूचक है। अभी तो यह मेघखण्ड छोटा ही है किन्तु शीघ्र ही फैल जायगा। जल्दी से वाहनों को रोक लो और पाल को मजबूती से बाँध दो। सुरक्षा के उपाय करो।

सागरदत्त का कथन पूरा भी नहीं हो पाया था कि उस छोटे से मेघखण्ड ने विशाल आकार धारण कर लिया। सूर्य ढक गया। अन्धकार छा गया। जल की धार बरसने लगी। वायु के वेग से वाहन ढगमगाने लगे और लहरों के प्रबल थपेड़ों से वाहन भंग हो गए। सागरदत्त के हाथ एक लकड़ी का पाटिया लग गया। उसी के सहारे पाँच दिन तक लहरों के थपेड़े खाता हुआ वह चन्द्रद्वीप के किनारे जा लगा। कुछ समय तक तो वह किनारे पर अशक्त-सा पड़ा रहा और फिर उठकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गया। उसे बड़े जोरों की भूख लग रही थी। इसलिए क्षुधा तृप्ति हेतु वह द्वीप में भटकने लगा कि कहीं खाने योग्य फल मिल जाये तो अपनी भूख शांत करूँ।

चन्द्रद्वीप अनेक प्रकार के वृक्षों से समृद्ध था। उसने दूर से लौंग-इलायची आदि के वृक्षों का लतागृह देखा तो उसी की ओर चल दिया। समीप पहुँचने पर उसे एक नारी की कराह का स्वर सुनाई दिया। लतागृह में प्रवेश करते ही एक सुन्दर युवती अशोक वृक्ष से गले में फंदा लगाए हुए लटकती दिखाई दी। सागरदत्त ने जैसे ही उसका फंदा खोला वह युवती भूमि पर गिर पड़ी। अचेत तो वह हो ही गई थी। चन्दन के पत्तों से व्यंजन किया तो कुछ देर बाद उसकी चेतना लौटी। समीप ही एक पुरुष को देखकर युवती सँभलकर बैठ गई। सागरदत्त ने पूछा-

सुन्दरी तुम कौन हो? वनदेवी, रति अथवा विद्याधरी?

कुछ देर तक तो वह युवती चुप रही और फिर बोली—

न मैं वनदेवी हूँ, न रति और न विद्याधरी, मैं तो साधारण मानवी ही हूँ।

तो इस वन में कैसे आ गई?

भाग्य ले आया।

फाँसी क्यों लगाई थी?

जीवन से निराश होकर।

स्पष्ट उत्तर न मिलने से सागरदत्त को खीझ-सी हो आई। उसने कहा—

सुन्दरी! तुम्हारा हर उत्तर एक पहेली है। यदि मुझे नहीं बताना चाहती तो मत बताओ। मुझे अधिकार भी नहीं है पूछने का।

अधिकार की बात नहीं। आप मेरी हार्दिक व्यथा को नहीं जानते। अकेली मैं और यह निर्जन बीहड़ द्वीप! कल्पना करिए, असहाय अबला की अवस्था की, क्या वह अपने मन-मस्तिष्क पर संयम रख सकती है?—सुन्दरी के स्वर में वेदना साकार थी।

सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए सागरदत्त ने कहा—

इसीलिए तो कह रहा हूँ, इस निर्जन द्वीप में संयोग से हम आ मिले है। मुझे आपबीती सुनाओ तो तुम्हारा दुःख कम हो जायगा और मैं भी यथासम्भव तुम्हारी सहायता करूँगा।

सहानुभूति के मरहम ने काम किया। सुन्दरी बोली—

भद्र! यद्यपि सहायता का समय तो बीत-सा ही गया, लेकिन तुम्हारा आग्रह है तो मेरी व्यथा कथा सुनो।

भरतक्षेत्र के दक्षिणी समुद्र तट पर श्रीतुँगा नाम की नगरी है। वहाँ महाधन नाम का एक श्रीसम्पन्न सेठ रहता है। उसके पास कुबेर के समान अक्षय धन भण्डार है। मैं उसकी पुत्री हूँ। एक रात मैं अपने भवन की छत पर सोई थी किन्तु अनेकों पक्षी और सैकड़ों पशुओं की आवाज सुनकर जाग गई–**आँखें खोलकर देखा तो अपने को इस बीहड़ वन में पाया। मैं चकित रह गई–कहाँ गया मेरा भवन? मैं तो अपने भवन की छत पर सोई थी, यहाँ कैसे आ गई? नगरी के स्थान पर वन कैसे बन गया है– यह देवमाया है या इन्द्रजाल? मैं इन्हीं विचारों में डूबी थी कि घबराहट में रुलाई फूट पड़ी– अरे पिताजी! आप कहाँ है? मैं किस विपत्ति में आ फँसी? यहाँ मेरा रक्षक कौन है?**

तभी एक विद्याधर ने सामने आकर कहा–

घबड़ाओ मत सुन्दरी! मैं तुम्हारासंरक्षक हूँ।

मैंने सिर उठाकर देखा–विद्याधर युवक था, सुन्दर था और तेज उसके मुख पर दमक रहा था। मैं अभिभूत हो गई। पूछा–

आप कौन है?

वैसे तो विद्याधर हूँ किन्तु इस समय तुम्हारा संरक्षक।

मैंने साहस करके पूछा–

आप मुझे अपना संरक्षक बताते है किन्तु मैं यहाँ आ कैसे गई? मुझे यहाँ कौन लाया?

नाराज मत हो। तुम पर अनुरक्त होकर मैंने ही तुम्हारा हरण किया है।

तुम हो कौन?

उसने बताया–

वैताढ्य गिरि के शिखर पर रहने वाला मैं एक पराक्रमी विद्याधर हूँ। पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए मैंने तुम्हें देखा तो अनुरक्त हो गया और दिल के हाथों विवश होकर तुम्हारा हरण कर लिया। यद्यपि इस समय तुम मेरे वश में हो फिर भी मैं तुम्हारी इच्छा जानना चाहता हूँ। यदि तुम मुझे न चाहो तो मैं वापिस तुम्हें तुम्हारे पिता के भवन पर पहुँचा दूँगा और अपने हृदय पर पत्थर रख लूँगा। तुम भली-भाँति सोच-विचार कर निर्णय करो।

उसकी उदारता और विशालहृदयता ने मेरा मन मोह लिया। मैंने सोचा—**अभी तो मैं कुंवारी ही हूँ। किसी पुरुष का मुझ पर अधिकार नहीं है। यह विद्याधर-नीतिज्ञ और उदारहृदय है। उत्तम पुरुषोचित सभी गुण इसमें है। मुझ वणिक् पुत्री को इससे अच्छा वर कहाँ मिलेगा।** यह सोचकर मैंने कहा—

जब आप मेरा हरण ही कर लाए है और मुझे प्रेम भी करते है तो अब जो इच्छा हो वही करो।

प्रसन्न होकर उसने कहा—

सुन्दरी! मेरे प्रेम का अनुकूल उत्तर देकर तुमने मुझ पर बहुत उपकार किया है।

वह मेरा हाथ थामना ही चाहता था कि उसी समय एक अन्य विद्याधर गरजता हुआ आया। उसके हाथ में नंगी तलवार थी। उसने मुझ पर अधिकार जमाना चाहा। मेरे लिए ही दोनों विद्याधरों में संघर्ष छिड़ गया। दोनों ही टक्कर के योद्धा थे कट-कटकर लड़े और प्राणहीन होकर गिर पड़े।

मैं अनाथ रह गई। न मैं अपने पिता के पास पहुँच सकती थी और न किसी अन्य स्थान पर। इस द्वीप पर मैंने घूम-घूमकर देखा किन्तु कोई मानव दृष्टिगोचर न हुआ। अकेली निराश हो गई और गले में फंदा लगाकर अशोक वृक्ष की शाखा से जा लटकी।

आपबीती सुनाकर उस सुन्दरी ने सागरदत्त से पूछा–

अब तुम बताओ इस द्वीप पर कैसे आ गये?

सागरदत्त ने भी आपबीती सुनाई। कन्या ने सब कुछ सुनकर पूछा—

अब क्या करने का विचार है?

सागरदत्त ने बताया—

करना क्या है? मेरी प्रतिज्ञा तो पूरी होने की अब कोई आशा नहीं है और प्रतिज्ञा भंग करके मैं जीना नहीं चाहता।

कैसी प्रतिज्ञा?

मैंने प्रतिज्ञा की थी कि एक वर्ष में सात करोड़ रूपये का उपार्जन करूँगा अन्यथा अग्नि को भेंट हो जाऊँगा। ग्यारह मास बीत चुके है और अब भाग्य ने इस निर्जन द्वीप में ला पटका है। अतः मैं तो अग्नि-प्रवेश करूँगा।

अग्नि-प्रवेश की बात सुनते ही एक बार तो उस कन्या का हृदय काँप गया किन्तु दूसरे ही क्षण दृढ़ होकर बोली—

यदि ऐसा ही है तो मैं भी अग्नि-प्रवेश करूँगी।

तुम क्यों अपने इस रूप लावण्य की होली जलाना चाहती हो?

क्या होगा इसका इस निर्जन द्वीप में? तिल-तिल मरने से तो जलकर मर जाना अच्छा है।

किसी-किसी स्त्री में दृढ़ता अधिक होती है। वहीं दृढ़ता इस समय युवती के शब्दों में थी। सागरदत्त और उस सुन्दरी दोनों ने मिलकर लकड़ियाँ एकत्र की, चिता बनाई और उसमें आग लगा दी। ज्योंही वे उसमें कूदे उसी क्षण चिता शीतल सरोवर बन गई। चमत्कार हो गया।

वह चमत्कार किया पद्मकेसर देव ने। सागरदत्त ने आँखें फाड़कर देखा तो आकाश में एक मणिजटित स्वर्णमयी सुन्दर विमान है और उसमें एक देव खड़ा मुस्करा रहा है। चकित होकर सागरदत्त देखने लगा तो वह देव बोला—

सागरदत्त! आत्महत्या जैसा घोर निद्य कर्म; नरक जाने की तैयारी और वह भी सिर्फ सात करोड़ रुपयों के लिए। भूल गए वे स्वर्ग-सुख जो हम पाँचों ने भोगे और यह भी भूल गए कि इससे पहले हम पाँचों ही जैन श्रमण थे। उस जन्म की तपश्चर्या के फल को यों बरबाद मत करो। मानव-जीवन तुम्हें आत्म-उन्नति के लिए मिला है, अवनति के लिए नहीं।

देव के उद्‌बोधन से सागरदत्त के ज्ञान-चक्षु खुल गए, उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। उसे स्मृति ही आयी कि **मैं पद्मप्रभ देव था और यह मेरा मित्र पद्मकेसर देव। अपने वचन के अनुसार मुझे प्रतिबोध देने आया है।** सागरदत्त उठ खड़ा हुआ और देव को नमन करके बोला-

मित्र! तुमने अपना वचन निभा दिया। अब मुझे किसी मुनि के पास पहुँचा दो, जिससे संयम धारण करके मैं अपना आत्मोद्धार कर सकूँ।

देव ने कहा—

सागरदत्त! अभी तुम्हारे भोगावली कर्म शेष हैं, इसलिए संयम नहीं ले सकते।

फिर अब क्या करूँ?

अभी तो मैं तुम्हें सात करोड़ से तिगुने इक्कीस करोड़ रुपये देकर तुम्हारे नगर पहुँचाये देता हूँ। वहाँ धर्मपूर्वक गृहस्थ सुख भोगो।

क्रमशः

With best compliments

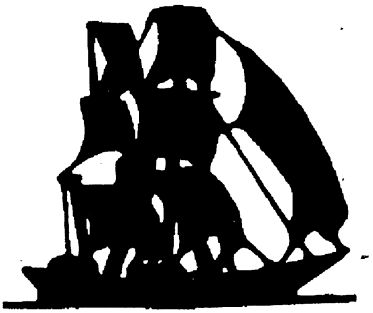

arcadia shipping limited

222, Tulsiani Chambers, Nariman Point,
Mumbai-400 021
Tel : +91 22 6658 0300 / Fax : +91 22 2287 2664
Email : arcadiashipping@vsnl.com

Ship Owners, Ship Managers

JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

English :

1.	Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:		
	Vol - 1 (satakas 1- 2)	Price : Rs.	150.00
	Vol - 2 (satakas 3- 6)		150.00
	Vol - 3 (satakas 7- 8)		150.00
	Vol - 4 (satakas 9- 11) ISBN: 978-81-922334-0-6		150.00
2.	James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)	Price : Rs.	100.00
3.	P. C. Samsukha - Essence of Jainism ISBN: 978-81-922334-4-4	Price : Rs.	15.00
4.	Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, ISBN: 978-81-922334-7-5	Price : Rs.	50.00
5.	Verses from Cidananda Translated by Ganesh Lalwani	Price : Rs.	15.00
6.	Ganesh Lalwani - Jainthology ISBN: 978-81-922334-2-0	Price : Rs.	100.00
7.	Lalwani and S. R. Banerjee- Weber's Sacred Literature of the Jains ISBN: 978-81-922334-3-7	Price : Rs.	100.00
8.	Prof. S. R. Banerjee Jainism in Different States of India ISBN: 978-81-922334-5-1	Price : Rs.	100.00
9.	Prof. S. R. Banerjee Introducing Jainism ISBN: 978-81-922334-6-8	Price : Rs.	30.00
10.	Smt. Lata Bothra- The Harmony Within	Price : Rs.	100.00
11.	Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira	Price : Rs.	100.00
12.	Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity	Price : Rs.	100.00

Hindi :

1.	Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) ISBN: 978-81-922334-1-3 Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	20.00
3.	Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	30.00
4.	Ganesh Lalwani - Chandan-Murti Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	50.00
5.	Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira	Price : Rs.	60.00

6.	Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat,	Price : Rs.	45.00
7.	Ganesh Lalwani -- Panchdasi.	Price : Rs.	100.00
8.	Rajkumari Begani-Yado ke Aine me.	Price : Rs.	30.00
9.	Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra	Price : Rs.	15.00
10.	Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm	Price : Rs.	24.00
11.	Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika	Price : Rs.	20.00
12.	Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad	Price : Rs.	250.00
	ISBN : 978-81-922334-8-2		
13.	Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra	Price : Rs.	50.00
14.	Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan	Price : Rs.	50.00
15.	Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal		
	ISBN : 978-81-922334-9-9	Price : Rs.	50.00
16.	Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh	Price : Rs.	

Bengali :

1.	Ganesh Lalwani-Atimukta,	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita	Price : Rs.	20.00
3.	Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma.	Price : Rs.	15.00
4.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma	Price : Rs.	20.00
5.	Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra	Price : Rs.	25.00
6.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita	Price : Rs.	20.00
7.	Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti	Price : Rs.	20.00

Some Other Publications :

1.	Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir	Price : Rs.	15.00
2.	Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan	Price : Rs.	10.00
3.	Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma	Price : Rs.	100.00
4.	Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali)	Price : Rs.	
5.	Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali)	Price : Rs.	50.00
6.	K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira	Price : Rs.	25.00

ऐसा विश्वास दिल में जमाते चलो
सिद्ध, अरिहन्त को मन में रमाते चलो,
वक्त आयेगा ऐसा कभी न कभी
सिद्धि पायेंगे हम भी कभी न कभी।

KUSUM CHANACHUR

Founder : Late. Sikhar Chand Churoria

Our Quality Product of :

Anusandhan	Bhaonagari Ghantia
Kolkata Nasta	Jocker
Badsha Khan	Lajawab
Picnic	Papri Ghantia
Raja	Rim Jhim
Shubham	Tinku

MANUFACTURED BY

M/s. K. K. Food Product
Prop. Anil Kumar, Sunil Kumar Churoria
P. O. Azimganj, Dist: Murshidabad
Pin No.- 742122, West Bengal
Phone No.: 03483-253232,
Fax No.: 03483-253566

KOLKATA ADDRESS:

36, Maharshi Debendra Road, 3rd Floor Room No.- 308
Kolkata - 700 006, Phone No.: 2259-6990, 3293-2081
Fax No.: 033-2259-6989, (M) 9434060429, 9830423668

TITTHAYARA
Vol Vol XXXVI No.06
25th September 2012
Registered
No. KOL.RMS / 070/2010-12
R.N.I. 30181/77

Creators of Prestigious Interiors
Established 1970

Creativity is a Modern Religion

Nahar

Architects . Interiors . Consultants

5B, Indian Mirror Street, Kolkata-700013
Phone No.-2227 5240/45, Fax :22276356
Email Id:info@nahardecor.com